ओ३म्

पारसीमत और वैदिकधर्म

पं० इन्द्र विद्या वाचस्पति प्रदत्त संग्रह

विद्यावाचस्पति रचयिता

इन्द्रलोक, जवाहर नगर
दिल्ली द्वारा मुन्शीराम जिज्ञासु।
कांगड़ी पुस्तकालय को भेंट

दयानन्दाब्द ३३

संवत् १९७३ विक्रमी

सन् १९१६ ई०

प्रथमवार १००० प्रति | मूल्य

गुरुकुल यन्त्रालय कांगड़ी में नन्दलाल

* ओ३म् *

पारसीमत और वैदिक-धर्म।

प्रस्तावना

पारसियों के मत की धार्मिक पुस्तक, पाश्चात्य विद्वानों में, ज़िन्दावस्ता के नाम से प्रसिद्ध है। जब तक युरप में इस पुस्तक का पता नहीं लगा था, तब तक पारसी-मत के असली निकास का स्रोत सर्वसाधारण को विदित न था। बहुत समय तक तो यही ज्ञात न था कि भारतवर्ष में जो पारसी जाति के लोग बसे हुए हैं, वे किसी बड़े पुराने मत के अनुयायी हैं; समझा यह जाता था कि फ़ारस के अर्वाचीन मत की ही यह कोई शाखा है।

पारसी-मत का इतिहास

पारसी-मत का वर्णन पहिले पहिल यहूदियों की धर्म पुस्तक "तौरेत"। * अध्याय ३६। आयत ३ में आया है, जहां पैग़म्बर जेरीमाया ने सम्राट् नैबुकैडनेज़र के जेरुसेलम में प्रवेश करते हुए लिखा है कि उसकी सवारी के साथ एक व्यक्ति Rag mag भी था (Rag का अर्थ है=प्रधान पुरुष, और Mag का=Magi। उस समय पारसी-मत के पुरोहितों की जाति को Magi कहते थे) और यहूदियों के प्रधान तीर्थ 'जेरुसेलम' को विजय करके प्रवेश के समय Magi के सर्दार का साथ होना जतला-है

(*) Bible **का पूर्वार्द्ध** = Old Testament (**तौरेत**)
उतर भाग = New Testament (**अञ्जील**)

ता है कि नेबुकैडनेज़र [बैबीलोनिया के सम्राट्] ने पारस [फ़ारस] को विजय करके उसके प्राचीन-धर्म के आचार्य को भी साथ ले लिया था । यह घटना ईसा से ५८८ वर्ष पूर्व हुई थी । फिर मालूम होता है कि ५०० ई० पू० (B. c.) तक बैबीलन के राजदर्बार में Magi का अधिकार रहा था ।

Bible में इनका वर्णन फिर केवल पैग़म्बर एज़ी-कायल, अ० ८ । आ० १६ में आता है । वहां लिखा है कि कुछ यहूदी अपने मंदिर के द्वार की ओर पीठ करके, अपना मुख पूर्व को किए, सूर्य की पूजा करते हैं । इससे ज्ञात होता है कि उस समय भी पारसी मूर्तिपूजक न थे ।

ईसाईयों की New Testament [अञ्जील] में भी वर्णन इस प्रकार है कि जब ईसा उत्पन्न हुआ तो उसे देखने के लिए विद्वान् पुरुष पूर्व से आये । वहां Magi शब्द है:—

"Now when Jesus was born in Bethlehem of Judæa in the days of Herod the king, behold, there came wise men (Magi) from the east to Jerusalam." (Saint Mathew अ० २ । श्लो० १ ।)

इतिहास में, सब से पूर्व, पारसी-मत का वर्णन यूनानी ऐतिहासिक 'हेरो-डोटस' ने किया है । उसका समय ४०० ई० पू० है । इस की पुस्तक के ८१, ८२ अध्याय में पारसियों के [illegible] काण्ड का बहुत सा विधान किया हुआ है । उस से [illegible] होता है कि पारसियों में उस समय भी मूर्त्तिपूजा न थी,

पशु का बलिदान देने लग गये थे। आगे पारसियों की धर्म-पुस्तक का आन्दोलन करते हुए पता लगेगा कि आदि में इनके यहां मांसभक्षण तथा हिंसा का निषेध था, जिससे परिणाम यह निकलता है कि भारत में वाममार्ग के प्रचार होने के पश्चात भी आर्यों के धर्म सम्बन्धी विचार पारसियों में जाते रहे।

हिरोटोडस के पश्चात् ४०० ई० पू० में टिशियस, ३५० ई० पू० में 'डीनन', ३०० ई० पू० में थियोपाम्पस, २५० ई० पू० में हर्मीप्पोस ने भी पारसियों [Magi जाति के लोगों] के मत के विषय में बहुत लिखा है; परन्तु उनकी पुस्तकें बहुधा नहीं मिलतीं, और प्राप्त भाग भी शृंखला बद्ध नहीं है। प्राचीन यूनानी ग्रन्थों से यह पता लगता है कि सिकन्दर का गुरु अरस्तू (Aristotle) भी पारसी-मत के विषय में बहुत कुछ जानता था। रोमन ऐतिहासिकों में से "प्लूटार्क" ने भी पारसी-मत का वर्णन किया है। भूगोल विद्या के अविष्कर्ता "स्ट्राबो" ने ६० ई० पू० में अपनी भूगोल पुस्तकों में Magi के मत का वर्णन करते हुए लिखा है:— "चाहे किसी भी देवता को बली देनी हो, पारसी लोग सब से पूर्व अग्नि का आवाहन करते हैं जिसे (अग्नि को) उनकी यज्ञशाला में छिलका उतारी हुई लकड़ी से भोजन दिया जाता है, तथा उसको कभी बुझने नहीं दिया जाता है, वे उस पर घी डालते हैं तथा तैल भी। यदि कोई पुरुष उस में मुर्दा वा कोई अन्य अपवित्र पदार्थ डालता है तो उसे मृत्युदण्ड देते हैं; अग्नि को धौंकनी से सुलगाते हैं।"

सन् १८० ईसवी में प्रसिद्ध यूनानी यात्री "पौसेनियस" ने भी पारसियों के 'होम' का वर्णन किया है, जहां यज्ञकुण्ड, समिधा, और घृताहुतियों के अतिरिक्त किसी हिंसादि का वर्णन नहीं है। फिर ५०० ईसवी में ऐतिहासिक एमेथियस ने पारसी-मत का कुछ विस्तृत वर्णन किया है।

इस ने बतलाया है कि फ़ारस के रहने वालों ने अपने पुराने धर्म को छोड़ कर 'ज़रथश्त्र' को अपना पैग़म्बर मान लिया और उसका समय फ़ारस के बादशाह 'कैख़ुसरो' के साथ जतलाया है। यूनानी लेखकों की, पारसी-मत के विषय में, क्या सम्मति रही है, इस से उस मत के स्रोत का भी पता लगता है। यूनानी लेखक 'डमेशियस' ने अपनी पुस्तक मूल-सिद्धान्त नामी में लिखा है:—

"Magi तथा सारी आर्यजाति 'यूडिमौस' के लेखानुसार, कोई *अवकाश* को तथा कोई *काल* को, मूलकारण समझते हैं जिस में से कि उत्पन्न हो कर स्वच्छ देवता और दुरात्मा एक दूसरे से जुदा हुए हैं, व जैसे कि अन्य कहते हैं—प्रकाश और अन्धकार—इन दोनों आत्माओं के प्रादुर्भूत होने से पूर्व।"

इसी प्रकार यूनानी लेखक थियोडोरस ने यही सिद्ध किया है कि ज़रथश्त्र का मत फ़ारस का प्राचीन मत नहीं। पारसी मत के सम्बन्ध में इसी प्रकार के विचार, आरम्भ के ईसाइयों में भी फैले हुए थे जिन्होंने 'ईरान' के सासानी सम्राटों के समय, अर्मीनियन

लेखकों के आधार पर पारसियों के मत का वर्णन कर, उस का खण्डन किया है। इन के लेखों से यह भी मालूम होता है कि उस समय पारसियों के दो भेद भी हो गये थे। उन में से पश्चिम में रहने वालों का नाम Magi अर्थात् माधव था, और पूर्व में रहने वालों का नाम ज़ेण्डिक था।

मुसल्मान लेखकों ने भी, महम्मदियों के फ़ारस पर विजय पाने के पश्चात् ही, पारसीमत पर लिखना आरम्भ कर दिया था। अरब के प्रसिद्ध यात्री तथा ऐतिहासिक 'मसऊदी' ने पारसियों की धर्म पुस्तकों के विषय में लिखा है—"प्रथम पुस्तक जो ज़र्दुश्त ने बनाई "अवस्था" थी; यतः पारसी उसे समझ नहीं सकते थे, अतः ज़र्दुश्त ने उसका भाष्य किया और उसका नाम 'ज़न्द' रक्खा, फिर उसने इस भाष्य की भी टीका बना कर उसका नाम "पज़न्द" रक्खा। ज़र्दुश्त की मृत्यु के बाद पारसियों ने उसकी भी टीका बनाई, जिस में ऊपर वर्णित पुस्तकों पर विशेष टिप्पणी कर "यज़दाह" नाम रक्खा।"

मसऊदी की सम्मति में ज़रथश्त्र का समय ईसा पूर्व ६१० सम्वत् था। सन् ११५३ ईसवी में प्रसिद्ध मुहम्मदी लेखक "शाहरास्तानी" का देहान्त हुआ, उसकी सम्मति Magi जाति के विषय में बहुत अच्छी थी। जहां अन्य मुसल्मान लेखक Magi को मूर्तिपूजक और ब्राह्मणों की तरह सितारों की पूजा करने वाले समझते थे, वहां शाहरास्तानी उनको एक ईश्वर पूजक बतला कर यहूदियों, ईसाइयों, और मुस-

ल्मानों की श्रेणी में ही सम्मिलित करता था। यही लेखक बतलाता है कि पारसियों का एक भाग पुनर्जन्म को भी मानता था। एक बात मुसल्मान लेखकों में विचित्र मालूम होती है। अन्तिम महम्मदी लेखकों ने अपने लेखों तथा कोशों में भी 'ज़र्दुश्त' अपने पैग़म्बर "इब्राहीम" का ही दूसारा नाम बतलाया हैं। परन्तु संसार के इतिहास में यह कोई नई बात नहीं। जब कहीं किसी जाति ने अपने धार्मिक विचार किसी पूर्व जाति से लिये तो उस जाति के प्रवर्तक को अपनी जाति का सुधारक ही समझ लिया। आगे आन्दोलन करने पर पता लगेगा कि मुसल्मानों ने अपने धार्मिक विचार प्रायः पारसियों से लिये हैं अतएव उस मत के सुधार के पैग़म्बर को इब्राहीम ही बतलाया है।

पारसी-मत में युरोपियनखोज

भारत-वर्ष में आने से पूर्व युरोपियन जातियां पारसीमत के विषय में कुछ नहीं जानती थीं; मुसल्मानों के अत्याचार से तंग आ कर ज़रथश्त्र के अनुयायियों ने भारतवर्ष में आकर उदार आर्य-जाति की शरण ली। उनको यहां निवास करने की आज्ञा देते हुये ३ शर्तें कराई गईं:—

१—यह कि वे सब हथियार रखदेवें।

२—यह कि अपनी पोशाक बदल लें—इसी लिये वर्तमान बम्बई के पारसियों की टोपी हिन्दुओं की पगड़ी के बंधेज़ से मिलती है।

३—गो वध न करें।

इस समय सारे संसार में पारसियों की संख्या एक लाख पांच हज़ार से अधिक नहीं है (लग भग इतनी है) जिनमें से भारत वर्ष में १,००,० ९६ वसते हैं। इन में बम्बई प्रान्त तथा बड़ौदा में रहने वालों का जोड़ कुल संख्या का $\frac{9}{10}$ भाग है। शेष $\frac{1}{10}$ सारे भारत वर्ष में बंटे हुए हैं, जिसमें से उनका विशेष भाग मध्यप्रदेश, बरार तथा दक्षिण हैदराबाद में रहता है।

पहिले पहिल यूरोपियन जातियों को 'पारसी' मत का परिचय भारत वर्ष में हुआ। सब से पूर्व पारसी-मत की कुछ धर्म पुस्तकें इंग्लैण्ड में १७वीं शताब्दि ईसवी में लाई गईं; परन्तु उनको अद्भुततालय का श्रृंगार ही बना लिया गया, तथा खोल कर के किसी ने भी न देखा।

सब से पहला पुरुष जिसने Magi जाति के सिद्धान्तों का, अपेक्षया, विस्तृत वर्णन किया Oxford का प्रसिद्ध साहित्य-सेवी हाइड Hyde था। उसने सन् १७००. ईसवी में विविध साधनों द्वारा पारसी-मत के विषय में बहुत कुछ लिखा है, परन्तु यह सब कुछ मूल पुस्तकों के आधार पर नहीं है।

यूरप का प्रथम विचारक जिसने पारसियों के मूल ग्रन्थों का अन्दोलन किया फ्रांसिसी विचारक एन्किटिल डुपेरन [Anquetil Duperron] था। 'अवेस्ता' के कुछ पत्रे देखकर उसने दृढ़ संकल्प किया कि पारसीमत के मूल ग्रन्थों को ढूंढ निकालना

है। सन् १७५४ में बहुत सा कष्ट झेल कर वह बम्बई पहुंचा। उस समय जैनियों की तरह पारसी भी अपने मत की पुस्तकें अन्यों को नहीं दिखाते थे, और युरोपियनों पर तो, उनके विदेशी होने के कारण, विशेष सन्देह था। परन्तु जो काम धर्मानुसार न होसका उसी में 'एन्क्विटिल' को रिश्वत देकर कृतकार्यता प्राप्त हुई। सूरत के *दस्तूर दराब ने पैसे के लालच से इसको अवेस्ता तथा पहलवी भाषायें सिखलाईं। इन भाषाओं में पर्याप्त योग्यता प्राप्त करके मार्च सन् १७५९ ईसवी में एन्क्विटिल ने ज़िन्दावस्ता का अनुवाद करना प्रारम्भ कर दिया, और १७६१ में युरप लौटने तक वह अनुवाद करता रहा। उसने पूर्वीय भाषाओं के १८० हस्त-लिखित पुस्तक प्राप्त किये, जिनमें कुछ पारसियों के धर्म पुस्तक भी थे। युरप लौटने पर वह सीधा इंगलैंड गया और जो अवेस्ता के हस्त-लिखित पत्रे [British Museum] में पड़े थे उनके साथ अपनी पुस्तक का मुक़ाबिला किया; तब अपनी प्राप्त की हुई पुस्तकें पैरिस की [National Library] में धरदीं। १० वर्ष के पश्चात, सन् १७७१ ईसवी में, ज़िन्द-अवेस्ता का प्रथमानुवाद एनक्विटिल ने छपाकर मुद्रित किया।

इस ग्रन्थ के छपने पर युरप के विद्वद् मंडल में तहलका मचगया; लोगों को नई बात जानने की बहुत आशा बंधी, परन्तु सारा ग्रन्थ पढ़ने पर दार्शनिकों [Philosophers] को बहुत निराशा हुई। जर्मनी के प्रसिद्ध Philosopher Kant ने

* पारसियों के पुरोहितों को दस्तूर कहते हैं।

कह दिया कि सारी ज़ेन्द-अवेस्ता में किसी एक दार्शनिक विचार का ग्रन्थ भी नहीं मिलता, केवल इतनाही नहीं प्रत्युत् Oriental Scholars पूर्वीय विचारकों में तो झगड़ा आरम्भ होगया कि एनाक्विटिल का अनुवादित ग्रन्थ वास्तविक है वा नहीं। Sir Willian Jones का तो यह हेतु था कि यतः ग्रन्थ में बुद्धि तथा न्याय से कार्य नहीं लिया गया अतः वह ज़र्दुश्त की बनाई नहीं होसकती। फ़ारसी कोष का कर्त्ता Richardson यह युक्ति देता था कि यतः पुस्तक में फ़ारसी भाषा के शब्द नहीं हैं, तथा अरबी के अधिक शब्द हैं, तथा इस में बचपन की सी बातें लिखी हुई हैं, जो प्राचीन पारसिया की समझ पर एक धब्बा है; अतः ग्रन्थ असली नहीं है। इस समय इन युक्तियों में कोई सार नहीं दिखलाई देता, जब पता लग चुका है कि अवेस्ता के प्रत्येक १० शब्दों में ६ वा ७ शब्द शुद्ध संस्कृत के हैं; और अरबी के शब्दों का उस में नाम भी नहीं है।

फ्रांस के विचारक तो स्वभावतः एनक्विटिल के अनुकूल थे, परन्तु सबसे अधिक सहायता (Kleuker] क्ल्यूकर से मिली, जिसने न केवल उसको असली बतलाया प्रत्युत सारे का जर्मन में अनुवाद कर अपनी टिप्पणी भी दी। जर्मनी में उसके पश्चात् पार्सीमत ही क्या, यहूदियों के Old Testament के समझने के लिये भी इसी को प्रयोग में लाया जाता था। इंगलैण्ड में एनक्विटिल की पुस्तक को बनावटी समझा जाता रहा तथा उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया।

५० वर्ष तक इसी प्रकार सन्देह की अवस्था रही जब कि डेन्मार्क के प्रसिद्ध विचारक (Rask) ने बम्बई आदि घूम कर सन् १९२६ ई० में ज़िन्द भाषा का समय तथा उसकी प्रमाणता पर एक लेख लिखा। उस लघु पुस्तिका में उसने सिद्ध किया कि ज़िन्द-अवेस्ता की भाषा संस्कृत से मिलती है। उस समय लोगों के संदेह दूर हुए। परन्तु ज़न्द-अवेस्ता के ठीक विचारों को तथा उस के शब्दार्थ को ठीक प्रकार प्रकट नहीं किया जासकता था, क्योंकि अवेस्ता तथा संस्कृत के शब्दों की समानता दिखलाने के लिये उस समय कोई कोश नहीं बना था। इस कमी को भी एक फ्रेञ्च विचारक ने ही पूर्ण किया। पेरिस के प्रसिद्ध बड़े कालिज के Professor Eugene Burnouf ने सबसे पूर्व आधुनिक संस्कृतसाहित्य में बहुत योग्यता सम्पादन कर के भागवत पुराणका अनुवाद किया। बर्नूफ़ ने अपनी संस्कृत की योग्यता को अवस्ता की शिक्षा तथा व्याकरण की बुनियाद डालने में लगाया और तब पता लगा कि यद्यपि एनकिटिल को ज़ेन्द-अवस्ता की पुस्तक तो ठीक मिली थी, परन्तु संस्कृत न जानने के कारण वह उसका अनुवाद ठीक न करसका। बर्नूफ़ को, पारसियों की धर्म पुस्तक "यास्ना" का संस्कृत अनुवाद 'नेरियोसंघ' का किया हुआ मिल गया; उसी का आधार लेकर इसने यास्ना का एक फ्रेञ्च में भाष्य लिखा।

पारसियों की अन्य पुस्तकों का भी इसने अनुवाद किया। सन् १८५२ में बर्नूफ़ के मरने पर, पारसीमत का आन्दोलन मध्य में ही रह गया। एनक्विटिल का अनुवाद बहुत दोषों से युक्त

था; फिर भी उसने असली ज़िन्द-अवस्ता का पुस्तक युरप में प्रचलित किया। बर्नूफ़ का कार्य उससे बहुत बढ़कर था, पर उसको भी पर्याप्त समय अन्दोलनार्थ नहीं मिला। पारसी गाथाओं तक उसकी गति नहीं हुई थी, जिनके छन्द भी संस्कृत से मिलते हैं।

सबसे पूर्व विचारक जिसने अवस्ता की भाषा, व्याकरण तथा कोष संसार को दिया, Kiel University का प्रसिद्ध Professor Olhausen था। उसने सन् १८२६ ईसवी में वैण्डीडाड के चार अध्याय छपवाये। इसके कार्य की पूर्ति प्रसिद्ध डेनिश स्कौलर Danish Scholar "Francis Bopp" ने की। इसके पश्चात् बवेरिया की गवर्नमेन्ट ने बहुतसा धन देकर अपने दो पूर्वीय भाषाओं के विचारकों अर्थात् मार्कजे़फ़ म्यूलर और फ्रेडरिक स्पीगल इस कार्य पर लगा दिए। म्यूलर पैरिस से अवस्ता तथा पहलवी के मूल ग्रन्थों की नक़ल करवा लाया, परन्तु स्पीगल ने मूल ज़िन्दा-वस्था को शोध कर सबसे पूर्व छपवाया। फिर वह कोपिन हैगन, पैरिस, लण्डन, आॅक्सफ़ोर्ड में भ्रमण करता हुआ, अपनी आवृत्ति छपवाने ही लगा था कि लिपज़िग में प्रोफ़ेसर हरमन ब्राकहस ने एक प्रथम की आवृत्ति, वैण्डीडाड, यास्ना और विस्परद की छापी और साथ ही एक अवस्ता का कोश भी छाप दिया। उस समय से जर्मनी में पूर्वीय भाषाओं के अन्तर्गत अवस्ता की भी गिनती होने लगी।

इसी समय जब स्पीगल ज़िन्द-अवस्ता की अपनी आवृत्ति छाप रहा था प्रो० वेस्टरगार्ड ने कोपनहेगन से ज़ेन्द-अवस्ता के छापने की सूचना दी। उसने भारत तथा फ़ारस, दोनों ही स्थानों, में बहुत सी हस्त-लिखित पुस्तकों की खोज की। वास्तव में पारसी मत की धर्म पुस्तकों के पुराने लेख पश्चिमीय भारत, उस में भी विशेषत: गुजरात, में मिलते हैं। परन्तु गुजरात के पारसिओं ने वेस्टरगार्ड पर विश्वास न किया, अतः उसको बहुत थोड़ी पुस्तकें मिली। स्पीगल की तरह वेस्टरगार्ड ने फ़ार्सी व्याकरण तथा कोश बनाने का विज्ञापन दिया था। इन दोनों विद्वानों की पुस्तकों की समालोचना जर्मनी के प्रसिद्ध (Scholar) मार्टिनहौग ने भी की थी, परन्तु सबसे उत्तम समालोचना हैनोवर देश के गौटिनजन नगरस्थ विश्वविद्यालय के प्रो० थियोडोल वेनफ़ी ने की। वह स्वयं संस्कृत का उपाध्याय था, अतः उसने संस्कृत से मुक़ाबिला कर के यह बतलाया कि ज़िन्द-अवस्ता के पहलवी भाषा में अनुवाद की अपेक्षा संस्कृत से सहायता लेने पर अवस्ता के मंत्रों का अर्थ ठीक समझ में आ सकता है।

इस समय पारसी मत के विषय में जो हम जानते हैं उस के बड़े भाग का आन्दोलन मार्टिनहौग ने किया है। यह वार्टिनवर्ग के होहन—ज़ौलर्न [Hohen Zollern] गढ़ के पास आस्टडार्फ में ३० जनवरी १८२८ ई० में उत्पन्न हुआ था। उसका पिता एक साधारण किसान था, परन्तु

पुत्र को उसने अच्छी शिक्षा दी। सन् १८४१ ई० में उस ने हिब्रू आदि कई भाषायें पढ़लीं थीं, और नवम्बर १८४३ में वह पाठशाला में सहायक अध्यापक नियत हुआ। मार्टिन-हौग ने १८४७ में (Inspector of Schools) को कह दिया कि वह नौकरी छोड़ युनिवार्सिटी में शिक्षा प्राप्तार्थ जावेगा। संस्कृत में वह इस समय अच्छी योग्यता प्राप्त कर चुका था और मार्च १८४८ में १२ आने के पैसे जेब में डालकर ट्यूबिन-जेन् के विश्व-विद्यालय को चल दिया, जहां उसके उपाध्यायों ने शीघ्र उसकी योग्यता को पहचान लिया और उसे D.Sc. बना दिया। इसके पश्चात् वह संस्कृत, अवेस्ता तथा पारसियों के धर्म-ग्रन्थों के विषय में आन्दोलन करता रहा, तथा बहुत से निबन्ध पारसी-धर्म पर छपवाये; परन्तु उसकी इच्छा भारत में पहुंच कर मूल ग्रंथ देखने की बनी रही। ऋग्वेद संहिता का पाठ उसने केवल अवेस्ता की पहेलियों को बूझने के लिए ही आरम्भ किया था। उसने अपने परिश्रम से जो परिणाम निकाला उसको अपने दूसरे निबंध में इस प्रकार वर्णन किया है:—

"मेरे आन्दोलन के लिये प्राचीन फ़ारसी भाषा (जिसे सर्वसाधारण पारसी कहते है) अधिक लाभदायक थी, परन्तु ज़न्द-अवस्ता की पवित्र भाषा की इस असली भतीजी से सहायता लेनी प्राय: काठिन और अधिक भ्रमोत्पादक है, इसकी उपेक्षा कि अवस्ता की बड़ी बहिन, वैदिक संस्कृत, से सहायता ली जावे।"

हौगने दृष्टान्त के लिये कुछ उदाहरण दिए हैं—आधुनिक फ़ारसी में हृदय को दिल कहते हैं, अवेस्ता में इस को ज़ेरदय और संस्कृत में उसी को हृदय कहते हैं। मार्टिन-हौग कहते हैं—"हृदय का अपभ्रंश, ज़ेरदय समझ लेना कठिन नहीं है। जब हम देखते हैं कि संस्कृत का 'ह' प्रायः अवस्ता में 'ज़' से बदल जाता है, और संस्कृत का 'स' 'ह' से परिवर्तित होता है—यथा वैदिक संस्कृत के 'सोम' को अवस्था में 'हाऽम' कहा है। इसी प्रकार अवेस्ता में 'वर्षा' को 'शरेऽदा' कहते हैं, इस को फ़ारसी में देखना कठिन है, परन्तु वैदिक संस्कृत का 'शरद' इस की घुण्डी खोल देता है।"

ज़िन्द	फ़ारसी	संस्कृत
कैरीनाउती	कुनद	कृणोति, करोति
आतर्श	आतिश	अथर्

यास्ना गाथाओं का पता मोर्टिन हौग ने लगाया। इस ने सब से पूर्व गाथाओं को भली भांति पढ़ कर गाथा के ४४वें अध्याय का अनुवाद भी किया, जो १८८८ ई० में "Journal of the German Oriental Society" में छप गया था। मार्टिन हौग की चिरकाल की आशा तब पूर्ण हुई जब कि सन् १८९८ ई० में बम्बई प्रान्त की शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर मिस्टर होवर्ड ने इन्हें संस्कृत शिक्षा का अध्यत्त बना कर बुलवाया। उस समय प्रो० हौग का सम्बन्ध बनसेन (Bunsen)

आदि बड़े २ विद्वानों के साथ था, पर उन्होंने सर्व सम्बन्धों को छोड़ कर जून १८५८ में भारत को प्रस्थान किया। उन्होंने भारत वासियों के साथ ऐसा अच्छा व्यवहार किया कि वह ब्राह्मण पण्डितों तथा पारसी दस्तूरों— दोनों के विश्वास पात्र बन गये। कर्मकाण्ड की क्रियात्मक शिक्षा को पढ़ उस का अनुवाद किया, और बड़ी विद्वत्तापूर्ण भूमिका लिखी। १८६६ ई० तक हौग भारत में रहा, और उस समय उसने सारे भारत में घूम कर जहां वेद और अवेस्ता पर व्याख्यान दिए, वहां बहुत से हस्त-लिखित पारसियों के धर्म-पुस्तक भी प्राप्त किए। उस ने बड़ा अच्छा पुस्तकालय संग्रह किया जिसको अन्त में म्यूनिच (Munich) की गवर्नमेंट ने खरीद कर अपने सार्व-लौकिक पुस्तकालय में धर दिया। मार्टिन हौग का देहान्त, वर्षों बीमार रहने के पश्चात् ३ जून १८७६ में हो गया जिस कारण उस के बहुत से परिश्रम का फल उसी के साथ समाप्त हो गया।

मार्टिन हौग की मृत्यु के पश्चात् फ्रांस के प्रसिद्ध नये विचारक जेम्स डेमस्टेटर ने 'Sacred books of the East series' में ज़िन्दावेस्ता का अनुवाद छापना प्रारम्भ कर दिया, जिस के दो भाग ही छपे थे कि डेमस्टेटर का देहान्त हो गया। तब उसका काम प्रोफ़ेसर L. H. Mills ने संभाला, जिस ने कि शेष तीसरा भाग निकाल कर ज़िन्दावेस्ता का अनुवाद पूर्ण कर दिया। इस के साथ ही सन् १८८० ई० में पहलवी मूल पुस्तकों का

अनुवाद प्रोफ़ेसर E. W. West ने आरम्भ कर दिया था, जो ९ भागों में सन् १७२८ ई० में समाप्त हुआ।

मार्टिन हौग ने अपने तीसरे निबन्ध में बहुत से पारसी अनुवादिकों का भी उल्लेख दिया है, परन्तु यतः उन की पुस्तकों की आलोचना युरोपीयन विद्वानों की पुस्तकों में आचुकी है अतः उसका उल्लेख करना आवश्यक नहीं। इस साधारण ऐतिहासिक दृष्टि डालने से जहां युरोपियन विद्वानों के परिश्रम की सराहना करनी पड़ती है वहां यह स्पष्ट है कि पारसी प्राचीन भाषा को समझने के लिये वैदिक भाषा के जानने की अत्यन्त आवश्यकता है।

पारसी धर्मग्रन्थों की भाषा

पारसियों की मूलधर्म पुस्तक '*अवेस्ता*' है। उसकी भाषा को भी इस समय के पाश्चात्य विचारक '*अवेस्ता*' नाम ही देते हैं। '*अवेस्ता*' '*विद*' धातु से निकाला जाता है, और उसके साथ '*अ*' निपात जोड़ कर उसके अर्थ ज्ञान व जानने के किये जाते हैं। जिस '*विद*' धातु से '*वेद*' बना है, उसी से पारसी व्याकरण में 'अवस्ता' बनाया जाता है। 'ज़न्द' शब्द 'ज़न' धातु से बना है जिसके अर्थ जानने व समझने के हैं। इस लिये 'ज़न्द-अवस्ता' से मतलब यह है कि ईश्वरीय ज्ञान को समझाने वाली भाष्य। पारसी भाषाओं को मार्टिन हौग ने दो भागों में विभक्त किया है। प्रथम स्वच्छ पारसी भाषायें जो कि पूर्वीय ईरान—अर्थात देश की बखतरियन शाखा में बोली जाती हैं। इसी भाषा में जिन्द-अवेस्ता के सारे भाग लिखे गये हैं, और यह चिरकाल तक बखतीरिया

में बोली जाती रही है। इस प्रथम भाग की सबसे पुरानी भाषा में गाथायें लिखी गई हैं। द्वितीय—इसी भाषा का मध्यकालीन अपभ्रंश। ईसा से पूर्व ३०० वर्ष तक प्रथम भाषा रही। फिर क्रमशः उसका अपभ्रंश होता गया। इस समय तक प्रायः शब्द और उनके अधिक रूप संस्कृत से ही मिलते रहे। उस अपभ्रंश का पूर्व रूप 'पहलवी' में देखने में आता है। यह क्रमशः बिगड़ती हुई आधुनिक फारसी भाषा का रूप धारण करती गई, और इसी से मिलती हुई कोकेशस (Caucasius) की भाषा 'आसेटिस' है। उसी से अरेबियन और अफ़ग़ानों की पश्तो भाषा निकली है। इससे मालूम होगा कि अवस्ता की भाषा का बड़ा गाढ़ सम्बन्ध पहलवी के साथ है और पारसियों की पिछली धर्म-पुस्तकें पहलवी भाषा में ही लिखी गई हैं। मार्टिनहौग की सम्मति में जैसा गाढ़ सम्बन्ध मध्यकालीन संस्कृत-साहित्य का वैदिक-साहित्य के साथ है वैसा ही ज़न्द-अवस्ता का सम्बन्ध वेदों के साथ है। मार्टिनहौग लिखते हैं—"वैदिक संस्कृत और अवस्ता की भाषा की व्याकरण में बहुत थोड़ा भेद है, और जो है, वह भी प्रायः उच्चारण और शब्द भेद है। कुछ नियमित उच्चारण के भेद और अन्य बोलने की प्रसिद्ध विशेषतायें ऐसी हैं जिसका ज्ञान होने पर शब्द-विद्यावित् किसी भी 'अवेस्ता' के शब्द को सुगमता के शुद्ध संस्कृत का शब्द बना सकता है। बहुत प्रसिद्ध परिवर्तनों के दृष्टान्त नीचे दिए जाते हैं:—

(१) संस्कृत में प्रारम्भ का 'स' 'ह' बनजाता है—यथा वेद का 'सोम' अवस्ता में 'होऽम' हो जाता है 'सम' का 'हम' बन जाता है 'स' का 'ह:' बन जाता है। 'सच' का 'हच'। यदि शब्द के मध्य में 'स' आवे तब भी वही परिवर्तन हो जाता है:—जैसे 'असु' का 'अण्हु'; सिवाय शब्द के अन्तिम भाग के जाहां 'स' ज्यों का त्यों बना रहता है।

शब्द के अन्त का 'श' वैसा ही बना रहता है यदि उसके पूर्व 'अ' न हो। अन्तिम दशा में, यदि 'अ' श के पूर्व हो, तब 'अश' का 'ओ' बनजाता है। परन्तु यदि उसके पश्चात 'च' हो तो भेद नहीं आता, यथा संस्कृत असुरा: का 'अहुरो' बनगया है 'अहुरश' नहीं बना। परन्तु छन्द में 'अहुराश्च' मिलता है।

(२) संस्कृत का 'ह' जब रूपान्तर से उत्पन्न होता है, वह अवस्ता में कभी नहीं रहता; तथा प्राय: "ह" "य" से बदल जाता है। यथा संस्कृत में–'हि' का 'ज़ि' बन जावेगा— 'हिम' अवस्ता में 'ज़िम'। हवे संस्कृत ह्वेक ज़वे। कभी२ अवस्ता का 'ज' 'संस्कृत' 'ज' के स्थान में भी आता है, यथा जन का ज़न फ़ारसी में ज़ादन; वैदिक 'जिह्वा' का 'हिज़्वा'।

(३) अवस्ता की संस्कृत शब्दों से समानता करने में प्राय: यह पाते हैं, कि अवस्या में एक'अनुस्वार' आता है जो कि संस्कृत में नहीं, जैसा कि 'अंग्हु'।

(४) संस्कृत श्वः के स्थान में अवस्ता के अन्दर स्प हो जाता है, यथा—'अश्वः के स्थान में 'अस्प' ग्रीक में हिप्पास। संस्कृत में 'विश्व' अवस्ता में 'विस्प'।

(५) सं० 'ऋत' के स्थान में पूर्व निमानुसार अवस्ता का 'अरित' होना चाहिये, परन्तु उस के साथ ही हम अवस्ता में अश्व भी उसी का पर्यायवाची पाते हैं; अतएव सं० मर्त्य का मश्य बन जाता है अर्थात् ऋत् का 'अश्य' हो गया इत्यादि।

मार्टिनहौग ने इसी प्रकार समानता दिखाते हुए बतलाया है—

सं० — अव०	सं० — अ०	
अस्यै—अहमै	कस्यै—कहमै	येषाम्—इशाम्
श्वान,—स्पान	श्वः—स्प	श्वानं—स्यानेन
शुनः—सूने	शूनस—सूनो	श्वास—स्यानो
शुना—सुनाम्	पथिन्—पथान्	पन्थ—पन्त
पथ—पथा	पंथ्यनस—पन्तानो	पथं—पथम्
कृणोमि-किरीनाउमी	गमयति—जमयति	गृभ्नामि—गैरिवनामि

अवस्ता के अन्य भागों की भाषा से, गाथा पुस्तकों की भाषा का उतना ही भेद है, जितना कि वैदिक-साहित्य का संस्कृत-साहित्य से भेद मालूम होता है। परन्तु *मार्टिनहौग* की सम्मति में वैदिक और संस्कृत साहित्य में अधिक सामीप्यता इस *लिये* रही है *कि* उन का व्याकरण *नियम* पूर्वक तथा पूर्ण था। अवस्ता की भाषा का कोई भी निश्चित व्याकरण नहीं मिलता और नहीं उसके नियम पूर्ण थे, इस लिए दोनों में

बड़ा भेद पड़ गया । सुनने वालों का कथन है कि गाथाओं का गान करते हुए पारसी पुरोहित ऐसे प्रतीत होते हैं कि मानो साम वेद के मन्त्रों का गान कर रहे हैं । जहां गाथा की भाषा अधिकतः वैदिक भाषा के साथ मिलती है वहां अवस्ता के दूसरे भाग,अर्थात वैण्डिडाड,यास्ना आदि—यदि कुछ समानता रखतते हैं तो अर्वाचीन संस्कृत-साहित्य के साथ । गाथा में जो *कैरीनाउमी* शब्द "मैं बनाता हूं"—इस अर्थ में आता है, वह स्पष्ट वैदिक कृणोमि से निकला हुआ प्रतीत होती है न कि संस्कृत करोमि से ।

दूसरा दृष्टान्त संस्कृत 'मह्यं' शब्द का ले सकते हैं । इस शब्द की समानता भी गाथा की '*मयिव्या*' (मैव्य) से प्रतीत होती है । इस से एक और कल्पना भी की जासकती है । वर्तमान पारसीमत में जहां गोमांस को पाप तथा घृणित समझा गया है वहां यज्ञ में पशुहिंसा का विधान है । गाथाओं के विचार वैदिक समय से गये; उन में पशुहिंसा का विधान सर्वथा नहीं है । और जिन भागों में पशुहिंसा का विधान है, उनके समय से पूर्व ही भारत वर्ष में वाममार्ग का प्रचार आरम्भ हो चुका था ।

जिन्दावस्ता की भाषा का स्रोत वैदिक संस्कृत भाषा को मानने तथा जरथस्त्र को वैदिकधर्म का पुनरुद्धारक समझने में मार्टिनहौग का ही विचार अब तक दृढ़ मालूम होता है । जन्दा-

वस्ता के अनुवादक "फ़रासीसी जेम्स डार्मस्टेटर" ने मार्टिन-हौग से मतभेद प्रकट करते हुए यह प्रतिज्ञारूप से लिखा है कि 'अवस्ता' की भाषा और उस के सिद्धान्त वेद से नहीं निकले, प्रत्युत वेद और अवस्ता दोनों का ही स्रोत कोई तीसरा था। यह सम्मति डार्मेस्टेटर ने सन् १८८० ई० में अपने ज़िन्दावस्ता के प्रथम भाग में दी थी। डार्मेस्टेटर सन् १८८३ ई० में ज़िंदावस्ता के अनुवाद का दूसरा भाग छपवा कर मर गया था, तब उस के अनुवाद का शेष भाग L. H. Mills ने समाप्त करके १८८७ में छपवाया। मिल्स ने बड़े आन्दोलन के अनन्तर मार्टिनहौग के सिद्धान्त को ही पुष्ट किया, और बतलाया कि ऋग्वेद के बनने से बहुत पीछे पारसी गाथायें बनीं, जिनका समय उसने १५०० ई० पू० स्थिर किया, तथा ज़रथस्त्र का समय ५०० ईसा से पूर्व बहुपक्षानुसार निर्धारित किया गया है। अतः मिलज़ का यह मत है कि ऋग्वेद से निकले हुए प्राचीन पारसी-धर्म में जो गिरावट होगई थी उसको दूर करने के लिए ज़रथस्त्र ने जन्म लिया; अतएव वह पारसी-धर्म का संशोधक था न कि संस्थापक। तब हम कह सकते हैं कि जो कुछ भी मार्टिनहौग ने सन् १८७६ ई० तक तय्यार करके छपवाया, उस को अशुद्ध सिद्ध करने का प्रयत्न अब तक सर्वथा निष्फल हुआ है। एक डार्मेस्टेटर ने ही उसके विरुद्ध आवाज़ उठाई थी, और उसने अपने मतभेद के लिए कुछ पुष्ट प्रमाण और युक्तियां नहीं दीं; केवल कथन मात्र ही प्रतिज्ञा लिखी थी। सारांश यह कि अवस्ता

की प्राचीन पारसी भाषा तथा प्राचीन पारसीधर्म के सिद्धान्त जो गाथाओं में वर्णित हैं, वेद से ही लिये गये थे।

मार्टिनहौग ने अपने ग्रन्थ के ७६ पृष्ठ पर लिखा है "यदि व्याकरण की स्थापना एक स्वतन्त्र विद्या के रूप में प्राचीन मोबिदों, दस्तूरों (पुजारी, तथा पुरोहितों) में होती जैसी कि संस्कृत-व्याकरण की ब्राह्मणों में थी, और यदि ईरान ने भी पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलि से पुरुष उत्पन्न किये होते जो कि संस्कृत-भाषा के धर्म निर्माता बने, तो हमको (पारसियों के) मूल-मन्त्रों की इस बुरी अवस्था की कम शिकायत करनी पडती तथा उनका भाष्य करने में बहुत थोडी कठिनाइयों का सामना करना पडता............ब्राह्मणों के व्याकरण विषयक परिश्रम का ही परिणाम था कि हम वेदों का आश्चर्यजनक शुद्ध और व्याकरणानुसार मूलपाठ पाते हैं और अन्य आर्ष-ग्रन्थों का भी।"

अवस्ता की भाषा का प्रथम अपभ्रंश पहलवी भाषा है, जिसको पाश्चात्य विचारकों ने जन्द कहा है। सिकन्दर के समय ईरान तथा भारतवर्ष की सीमाप्रान्त में यह भाषा बोली जाती थी तथा मनु ने भी भारतवर्ष से परे रहने वाली पाल्हव जाति का वर्णन किया है।

फारस में यह भाषा सासानियों के समय में बोली जाती थी। यतः जरथस्त्र के मत का ह्रास होकर उसकी पुनः स्थापना सासानियों के समय में हुई इसलिए जरथस्त्र के मत की सब पुस्तकें उसी

भाषा में लिखी गई। अवस्ता के पहलवी अनुवादों का ही नाम ज़न्द है इसके पश्चात् अरब निवासियों का आना जाना ईरान में हुआ और तब से अरबी शब्दों का भी समावेश पहलवी भाषा में होने लगा। अवस्ता के इस दूसरे अपभ्रंश का नाम फ़ारसी लेखक "इबनेमुकफ़्फ़ा" ने 'ज़वारिश' रक्खा। पहलवी में उसी का उच्चारण, 'हुज़ वारिष' है। ज़िन्दवास्ता के पहलवी अनुवाद पर जो टिप्पणी 'हुज़वारिष' में की गई उन का नाम पज़न्द रक्खा गया। बदलने को, लिपि और लेख शैली, तो बदल दी गई परन्तु उच्चारण जवारिष शब्दों का पहलवी शब्दों की तरह ही होता रहा यथाः—जवारिष में रोटी के लिए 'लहमा' लिखा जाता रहा और पढ़ा जाता रहा 'नांद' जो कि पहलवी में रोटी के अर्थ में आता है।

पहलवी साहित्य

पारसियों की धर्म पुस्तक जो शुद्ध भाषा में है उसको गाथा कहते हैं; संख्या में वे ५ हैं। उन में ईश्वर की स्तुति तथा प्रार्थना के मंत्र हैं, और पारसी विचारकों की सम्मति के अनुसार वेद के ईश्वर-विषयक सिद्धान्तों से सर्वथा मिलते हैं।

पहलवी में अनुवादित तथा भाष्य रूप में पारसीमत के दो प्रकार के ग्रन्थ मिलते हैं—प्रथम वे जिनका आधार अवस्ता पर है, तथा अवस्ता की प्रतीकों को लेकर ही चलते हैं; द्वितीय वे ग्रन्थ जिनका आधार किसी ज्ञात अवस्ता के मूल मन्त्र पर नहीं।

(१) अवस्ता सम्बन्धी पुस्तकों में प्रथम "वैण्डिडाड" है जिसमें ४८,००० शब्द हैं; अवस्ता के प्रत्येक पद का अनुवाद पहलवी में करके, वेद के भाष्यों की तरह असाधारण तथा कठिन शब्दों पर टिप्पणी है, तथा कहीं २ दूसरों का मत भी उसी प्रकार दिया है जिस प्रकार कि गृह्यसूत्रादि में "इत्येके" पद से दर्शाया जाता है। इस के पश्चात् क्रमशः निम्नलिखित ग्रन्थ मिलते हैं---

[ख] पहलवी यास्ना—३९,०००शब्द { प्रारम्भिक प्रार्थना को छोड़ कर

[३] पहलवी विश्व-परद—३३०० शब्द

[४] हदोख़त् नस्क—१५३०शब्द

[५] विश्तास्य यश्त—५२०० शब्द

इन के अतिरिक्त अहुर्माज़्दयश्त, खुर्शैदयश्त, सुरो-शयश्त हदोख़, हफ्तान-यश्त, वहरामयश्त, आदि बहुत से यश्त हैं।

फिर एक विशेष प्रकार के ग्रंथ हैं जिनको 'न्याइश' कहते हैं, यथा:—अतश न्याइश, और इनके अतिरिक्त बहुत से फुटकर ग्रन्थ हैं जिनका वर्णन यास्ना में आया है।

(२) अवस्ता सम्बन्धी तथा शुद्ध पहलवी ग्रंथों के मध्य में एक और प्रकार के ग्रंथ हैं जिनमें ज़िन्दावस्ता के उद्धरण तो दिये गये हैं, पर वे अब वर्तमान ज़िन्दावस्ता में नहीं मिलते। इन

में प्रायः कर्मकाण्ड का विधान है। इस कोटि के अब तक ३ ग्रन्थ मिले हैं—

[क] निरंगिस्तान—जिसमें ३०,००० शब्द हैं।

[ख] फ़रहंगे—ओ३म् खदूक—यह अवस्ता तथा पहलवी शब्दों का कोष है जिसमें ३३०० शब्द हैं।

[ग] अफ़रीनेदहमान—इसमें २००० शब्द है।

(३) शुद्ध पहलवी ग्रन्थ बहुत से हैं, जिनमें पारसी मत सम्बन्धी सर्व प्रकार के कर्मकाण्ड का विधान और इतिहास भी पाया जाता है; उनमें से इस समय जो विद्यमान हैं उनकी सूची निम्न प्रकार है:—

[क] वजरकर्दे दीनी—१६,००० शब्द—

[ख] दीनकर्ड— १,७०,००० शब्द—

[ग] दादिस्तानेदीनी— ३०,००० शब्द। इसमें पारसीमत सम्बन्धी ९२ प्रश्नों द्वारा शंका समाधान किया गया है, फिर भी यह ग्रन्थ अपूर्ण प्रतीत होता है।

[घ] शिकण्ड-गुमानी-विजार—१८,००० शब्द—

[ङ] बुन्दाहीश— १३,००० शब्द—

(च) मिनोके खर्द (विद्या, बुद्धि)—१२,००० शब्द—

(छ) शायस्तला—शायस्त १०,००० शब्द। इस में सब शुद्धि आदि प्रकरणों के अतिरिक्त यज्ञोपवीतका भी प्रकरण है।

(ज) अर्दा विराफ़ नामक (नामा) ८८०० शब्द—

इस में परलोक का जो दृश्य अर्दा विराफ़ ने देखा उसका वर्णन है ।

(झ) मवीगाने गोश्ते फ़रियानो, ३००० शब्द—

(ञ) वहमन यश्त ४२,०० शब्द—

इनके अतिरिक्त इसी कोठि के और बहुत से छोटे २ ग्रन्थ हैं जिनमें प्रधान ग्रन्थ 'जामास्प नामक' है। यह 'जामास्प' ईरान के सम्राट् 'गुश्तास्प' का पुरोहित था, जिसके राज्य में ईरानी ऐतिहासिकों के लेखानुसार ज़रथुश्त्र ने एकेश्वर पूजा, तथा अग्नि की स्थापना के प्रचार से मूर्तिपूजा की जड़ समूल उखाड़ दी थी। बहुत से ग्रन्थ पारसियों ने भारतवर्ष में आने के पश्चात् बनाये हैं, जिनकी गणना इस स्थान में करना उचित नहीं है। परन्तु 'मार्टिन हौग' ने प्रामाणिक पहलवी शब्द संख्या को जोड़ कर ५,१७,००० बतलाया है।

'अवस्ता' शब्द के अर्थ 'अव' तथा 'स्ता' धातुओं को मिलाकर (अव=जो, स्ता=स्थिर-जो स्थिर है—भावार्थ जो मूल हो) बनता है, परन्तु मार्टिनहौग की सम्मति में अवस्ता को पहलवी अविस्ताक, में ढूंढने से विस्त=अर्थात् विदज्ञाने धातु से निकला हुआ समझ सकते हैं, इस प्रकार अवस्ता तथा वेद पर्य्यायवाची शब्द हो जाते हैं। ज़न्द शब्द पहलवी 'ज़न्' धातु से बना है जो संस्कृत 'ज्ञ' का अपभ्रंश है। उसके अर्थ भी विद्या के हैं।

यद्यपि, अविस्ताक की पहलवी पुस्तकों के बहुत से भाग नहीं मिलते तथापि वर्तमान समय की पुस्तकों में उनका वर्णन आने से पता लगता है कि जब सिकन्दर ने एशिया पर चढ़ाई कर के भारतवर्ष पर भी धावा किया था तथा आर्य राजाओं से सतलुज (शतद्रु) नदी पर रोका जाकर लौटगया तो मार्ग में प्राचीन ईरान की राजधानी 'परसीपोलिस' में ठहरा तथा मद्य पीकर रात को एक यूनानी वेश्या के भड़काने से ईरान के सम्राटों के पुराने महल को जलवा दिया, जिससे पारसीमत के बहुत ग्रन्थ सदा के लिए जलकर नष्ट होगये। उनका अन्य ग्रन्थों में प्रमाण दिए जाने से वैसा ही पता लगता है जैसा कि मानव-धर्म-सूत्र के नाम से-कोई २ सूत्र आर्ष-धर्म सूत्रों में दिखलाई देते हैं।

पारसी धर्म ग्रन्थों के कर्त्ता

जन्दावस्ता का कर्त्ता पारसीमत का प्रसिद्ध प्रवर्तक जरथश्त्र ही समझा जाता है। इन ग्रन्थों में से, जिसका पुञ्ज जिन्दावस्ता कहलाता है, *गाथा*—ज़िन्द की गा, 'गाने' धातु से बना है अर्थात् जिस में ईश्वर के गुणानुवाद गाये जावें। (*यास्ना यज्ञ*) इस प्रकार यास्ना आत्मिक तथा भौतिक यज्ञों का पूर्ण विधान करता हो। विशपरद सृष्ट्युत्पत्ति तथा जरथश्त्र के परमात्मा से मेल का वर्णन करता है। पारसियों में यह दोनों *मार्टिनहौग* की सम्मति में, वही प्रमाणता रखते हैं जो कि आर्यों में वेद को है। जन्दावस्ता का तीसरा भाग पारसीमत में

वही स्थान रखता है जो कि आर्षग्रन्थों में स्मृतियों का है, क्योंकि उन में पारसी विविध पुरोहितों द्वारा कथित ज्ञान सम्बन्धी तथा कर्मकाण्ड सम्बन्धी उपदेश हैं। *मार्टिन हौग* की सम्मति में जहां यास्ना तथा विशपरद का कर्त्ता ज़रथश्त्र को कह सकते हैं वहां वैण्डिडाड का कर्त्ता ज़रथश्त्र नहीं हो सकता।

पारसी धर्म का उद्भव तथा विकास

यद्यपि पारसीमत के विषय में मार्टिन हौग की मृत्यु के पश्चात् भी यूरोपियन विचारक बहुत कुछ आन्दोलन करते रहे हैं, और 'जेम्स-डार्मस्टेटर' ने किन्हीं अंशों में उस के साथ मत-भेद का भी साहस किया, परन्तु जहां अपने मत-भेद के लिये वह कोई प्रबल हेतु नहीं देसका, वहां साथ ही पहलवी शब्द-कोष और ज़िन्दावस्ता के अनुवाद के विषय में भी कोई नई बात नहीं बता सका। जेम्स-डार्मस्टेटर के काम को समाप्त करने वाला L. H. Mills बड़े विचार के पश्चात् फिर मार्टिन हौग के साथ ही सहमत हुआ और उसने अपनी सम्मति दी कि सब से पुरानी पारसी मत की पुस्तकें गाथायें हैं और वे ऋग्वेद के अधिकतः समीप हैं। उस की सम्मति में गाथायें ऋग्वेद के २५, वा ३० सूक्तों के लगभग हैं। वह मानता है कि ज़रथश्त्र के पूर्व अहुरमज़्द को जगत कर्त्तामान कर पारसीमत का आरम्भ हो चुका था और वह मत ज़रथश्त्र के जन्म से शताब्दियों पूर्व फ़ारसदेश में प्रचरित था। उस का मत है कि अग्नि-देवता की पूजा और एक अद्वितीय परमात्मा की भक्ति पारसी

पुरोहित परिवार में पहिले से ही चली आती थीं, और ज़रथश्त्र भी उसी पुरोहित परिवार में उत्पन्न हुआ था।

गाथाओं की भाषा को वह दार्शनिक और वास्तव में गम्भीर बतलाता है तथा वैन्डिडाड आदि को कहानियें का पुञ्ज समझता है। वह लिखता है:—

"यदि ज़न्द का विद्यार्थी गाथाओं का भली प्रकार मनन करे और तब याश्तों (यास्ना के भागों का नाम) और वैण्डिडाड पर अपना ध्यान फेरे तब वह वास्तव्यता के क्षेत्र से किस्से कहानियों के क्षेत्र में चला जायगा।"

इस के पश्चात् पहलवी ग्रन्थों का अंग्रेज़ी अनुवाद करते हुए E. W. West को भी इसी प्रकार की सम्मति स्थिर करने के लिए बाधित होना पड़ा, अतएव पारसीमत के विषय में जो कुछ भी जाना जासकता है उस के लिए 'मार्टिनहौग के ही लेख प्रामाणिक होसकते हैं। परन्तु मार्टिनहौग के लेखानुसार पारसीमत का वर्णन आरम्भ करने से पूर्व 'वेस्ट' के पहलवी Texts के प्रथम भाग से बहमन यश्त नामी धर्म पुस्तक से उद्धरण देना आवश्यक है, जिस से पारसी मत का प्रारम्भिक इतिहास स्पष्टतया ज्ञात होजाता है। ज़िन्दावस्ता से पता लगता है कि ज़रथश्त्र के पूर्व मज़्दमत का भलीप्रकार प्रचार था। गौ को वे परम पवित्र देवता मानते थे। पुराणों की तरह जहां 'गो' शब्द गौ तथा पृथिवी दोनों अर्थों में आया है, यह लोग दोनों में कुछ भेद नहीं करते थे। जब पापों के भार से धरती

डगमगाई, वा यों समझें कि गोवध होने लगा, तो गौ 'अहुर-मुज़्द' के पास व्याकुल होकर अपनी रक्षार्थ प्रार्थना करने पहुंची। उस समय अहुरमुज़्द ने ज़रथश्त्र का आह्वान किया और उस को दैत्यों का नाश तथा गोमाता की रक्षार्थ बल बुद्धि दी। इन कहानियों से कई बातें स्पष्ट होजाती हैं। प्रथम यह कि ईरानदेश में सब से पूर्व गाथाओं का प्रचार था, और वहां कम से कम पुरोहित कुलके लोग एकेश्वरवादी थे। फिर पुरोहितों के आलस्य तथा प्रमाद के कारण मूर्तिपूजा का प्रचार हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि पुरोहितों के एक कुलका नाम 'स्पितामा' था और पुरोहित प्रायः सब ज़रथश्त्र कहलाते थे। अहुरमज़्द अर्थात् सृष्टिकर्त्ता दयालु, न्यायकारी की पूजा को छोड़ कर ईरान के सम्राट् तक दैत्यों के पूजक बन गये, जिन्हें वे देव कहते थे। उन दिनों ईरान में "कय" नामी राज-परिवार का शासन था। 'कय' संस्कृत के 'कवि' शब्द से बना प्रतीत होता है। और कय कुलके सम्राट् कयख़ुसरो ने बुराई के प्रतिनिधि सम्राट् 'ज़ोहाक' से राज्य छीना था। यह एक प्रकार का देवासुर संग्राम हुआ था। वेद में जो कवि के अर्थ तत्त्ववेता के हैं, वे ही अर्थ शायद पारसियों में भी लिये गये थे। कय राज परिवार के सम्राट् गुश्तास्प (विश्तास्प) के समय में ज़रथश्त्र का प्रादुर्भाव हुआ। फ़ारसी कवि फ़िर्दौसी ने लिखा है कि एक दिव्य पुरुष हाथ में अग्नि कुण्ड लिये हुए प्रकाशित

हुआ, और सम्राट् गुश्तास्प से कहा कि 'परमेश्वर अहुरमज़्द ने सच्चे धर्म की पुनः स्थापनार्थ मुझ को भेजा है। मुर्दों को जलाना तथा गाड़ना बन्द करदो, अग्नि में कोई अपवित्र पदार्थ न पड़ने पावे, क्योंकि वह परमेश्वर के स्वरूप का स्थानापन्न है।' गुश्तास्प ने इस सुधारक ऋषि को स्वीकार किया और जो ज़िन्दावस्ता की पुस्तक उस ने भेंट की उसका प्रचार सारे सभ्य संसार में अपने पुत्र असफ़ंदियार से करवाया।

अब 'मार्टिन हौग' के आधार पर पारसी मत का संक्षिप्त सार दिया जाता है:—

पारसी मत का ब्राह्मण मत के साथ सम्बन्ध

ज़रथश्त्र के मत की उत्पत्ति का हाल जानने के लिये यह जानना आवश्यक है कि ज़रथश्त्र के मत की ब्राह्मणी मत के साथ क्या समानता है।

(१) देव नामों की *समानता*—मार्टिनहौग की कल्पना यह है कि जब ऋग्वेद संहिता के पहिले भागों में असुर शब्द बुरे अर्थों में नहीं आता, प्रत्युत आत्मिक जीवन का सूचक है. और इस का बुरा प्रयोग ऋग्वेद के अन्तिम सूक्तों तथा अथर्ववेद में ही आया है तो इस परिणाम पर पहुंचना अनुचित नहीं कि मज़्दधर्म के संस्थापक आर्य उस समय भारत से पृथक् हो कर गये जब कि वहां के देव (विद्वान् लोग) अपने आदर्श से गिर चुके थे। अतएव उस समय के पारसी पुरुषाओं ने देव नाम को घृणित बना अपना नाम असुर धरा

और उन्हीं असुरों का स्वामी अर्थात् पूज्य देव ज़रथश्त्र हुआ । इन्द्र जो वेद का देवता है पारसी मत में '*दैवाना देव*' है अर्थात् राक्षसों का राक्षस । इन्द्र से दूसरा 'मित्र' वेद का देव ज़न्द में मिथ्र बन जाता है । अर्यमन् का एरियामन ज़िन्द में हो जाता है । *भग का गब्* *अर्यमति* का अर्यमपति, *नाराशंस* का नैरियो संध *वायु* का वायु ही रहता है, वृत्रहन्न का ज़न्द में *वीरयघ्न* बन जाता है । वेद के ३३ देव [त्रयोत्रिंशित् देवाः] ज़िन्द में ३३ रतु अर्थात् प्रधान शक्तियां बन जाता है ।

(२) जातीय नायकों के नाम तथा उनकी कहानियों में समता यथा—संस्कृत *यमराज* का अवस्ता के 'यिमक्षिपिता' (जम शेद) इत्यादि ।

(३) कर्मकाण्ड में समानता—ज़िन्दावस्ता में पुरोहित के लिये '*अथर्व*' शब्द आता है । इष्टि के लिये ज्यों का त्यों इष्टि शब्द है । *आहुति-आजुइति; होता-जोटा* । पारसियों में पुरुष तथा स्त्री दोनों का ही यज्ञोपवी संस्कार होता है । *ज्योतिष्टोम* के स्थानमें पजिष्ण (इजष्म) इत्यादि ।

(४) प्रायश्चित के नियम तथा गृहस्थधर्म की समानता और खगोल सम्बधी सम्मतियों की समता:—

'मार्टिनहौग' ने आन्दोलन बहुत ठीक किया है और शब्दों की समता भी भली भांति दर्शाई है । उन की कल्पनाओं में केवल एक ही भूल है । वह वैदिक धर्म में ईश्वर

विषय के विचार वे ही समझते हैं जो कि मैक्सम्यूलर आदि ने उस के गले मढ़ दिऐ हैं अर्थात् वेदों में ऐकेश्वर पूजा (Theism) के स्थान में बहुशक्ति पूजा (Henotheism) के चिन्ह देखते हैं। मार्टिनहौग का विचार है कि जब ब्राह्मणों में सुरापानादि की प्रथा चली, उस समय जो वैदिकधर्मी उन से बिगड़ कर चले आये, उन्हीं ने प्राचीन वैदिक मर्यादा की ईरान में स्थापना करते हुए, परमात्मा के लिए तो असुर नाम स्वीकार किया (प्राणदाता के अर्थ में असुर का प्रयोग करते हुए) और बुराई को देव नाम से प्रसिद्ध किया। यदि मार्टिनहौग यह समझलेते कि सायण आदि ने जिन शब्दों को विविध देवताओं के अर्थ में प्रयोग किया है, वे सब शब्द वेद में परमात्मा वाचक भी हैं, तो उन को यह भ्रम नहीं होता। परन्तु एक प्रकार से उन की कल्पना ठीक भी हो सकती है। गाथाओं में इन्द्रादि देवताओं का कोई वर्णन नहीं आया; वहां शुद्ध एकेश्वर पूजा का विधान है। यदि हम यह मानलें (जो कि पारसी मत की धर्म पुस्तकों से ही सिद्ध होता है) कि सब से पूर्व (शायद महाभारत के युद्ध से भी पूर्व) जो वेद के शुद्ध आत्मिक विचार आये, वे गाथा रूप में प्रसिद्ध हुए और उस के पश्चात् जब वेद में बहु देवताओं की कल्पना लेकर भारतवर्ष में वाममार्ग का प्रचार हुआ तो दूसरी [अधार्मिक] लहर ईरान में गई जिस ने सर्व साधारण में मूर्ति पूजा और

तत्सम्बधी बुराइयों का प्रचार किया और उस समय ज़रथश्त्र का जन्म हुआ जिस ने 'एकेश्वर पूजा' तथा पवित्रता की पुनः स्थापना करते हुए, पौराणिक देवतों की कल्पना के विरुद्ध आवाज़ उठा कर उन देवताओं को अन्धकार का प्रतिनिधि सिद्ध किया तो पारसीमत के उद्भव और विकाश का मर्म समझ में आ जाता है।

और इस विचारानुसार ज़रथश्त्र ने ईरान में वही कार्य किया, जो कि उस से सहस्रों वर्ष पीछे भारत में ऋषि-दयानन्द ने किया।

ज़रथश्त्र का समय और उसके फैलाये धर्म का स्रोत

ज़रथश्त्र से पूर्व पारसियों के पुरोहितों को *कवि*, *कर्पन*, और *उशिक्ष*, गाथाओं में लिखा है। यह कवि वेदों का ही शब्द है, पहलवी भाषा में कवि का *कवा* बन जाता है। ज़रथश्त्र से सैंकड़ों वर्ष पूर्व ईरान का राज्य परिवार 'कय' नाम से प्रसिद्ध था, जो कवा का ही अपभ्रंश है। शाहनामें का कैखुसरो वैण्डि-डाड का *कविहसरव* है। कैकुबाद *कविकवात* है—*कै-गुश्तास्प* *कविविश्तास्प* है। इसी प्रकार गाथाओं में ज़रथश्त्र के मुख में जो शब्द डाले गये हैं उनसे विदित होता है कि उससे पूर्व के पुरोहितों को *सौश्यन्तो*-(अर्थात् अग्नि पुरोहित) कहते थे। यास्ना के ४३ वें अध्याय के १५ सूत्र में ज़रथश्त्र अपने अनुयायियों को कहता है 'अंगरा (अंगिरा) नामी पुरोहितों का सत्कार करो।" अंगिरा के साथ अथर्वणों का भी वर्णन आता है और अब तक पारसियों के पुरोहितों को आथर्व कहते हैं। ऐसा मालूम होता है

कि इसी *अथर्वांगिरस* के परिवार में ज़रथश्त्र का जन्म हुआ था। पारसी धर्म पुस्तकों से उसके जन्म की ठीक तिथि का पता नहीं लगता। यास्ना अ० ४६। म० १५। में लिखा है कि यह अथर्वांगिरस के स्पितामा परिवार का सभासद था। मार्टिनहौग की कल्पना को यदि कुछ आगे ले चलें तो कहसकते हैं कि शायद स्पितामा किसी परिवार का नाम नहीं प्रत्युत यह शब्द सं० पितामह से ही बना है। और जिस प्रकार बालब्रह्मचारी होने के कारण भीष्म को पितामह कहते थे तद्वत ज़रथश्त्र को भी ईरान में पुरोहितों का पितामह कहने लग गये। ज़रथश्त्र भी कोई शब्द विशेष मालूम नहीं होता। यद्यपि पहलवी का व्याकरण कोष अपूर्ण होने के कारण इस शब्द के धात्वर्थ का पता नहीं चलता तथापि यह अवश्य मालूम होता है कि यह शब्द अग्नि पुरोहितों के लिये भी प्रयोग में आता था अतएव इसी लिए शायद यास्ना अ० १६ में पारसी मत के प्रवर्तक का नाम ज़रस्थश्त्रोतेमा आया है। तेमा सब से बड़े को कहते हैं, अतः अर्थ यह हुआ कि *ज़रथश्त्रों का भी ज़रथश्त्र* जैसे आज कल भी पारसियों के बड़े पूरोहित को "दस्तूरे दस्तूरां" कह सकते हैं।

ज़रथश्त्र संशोधक था और अपने आपको धर्म का संस्थापक समझता था, इसी से सिद्ध है कि यह अपने आपके आथरव (मन्त्रद्रष्टा) लिखता है और अहुरमज़्द का दूत (परमेश्वर का भेजा हुआ) बतला कर यह जतलाता है कि अहुरमज़्द

ने अपनी ज्योति के द्वारा उसको लोगों की पथदर्शकता का मर्म बतलाया है।

जरथश्त्र के समय के सम्बन्ध में कई कल्पनायें हैं। यूनान के दार्शनिक अरस्तू तथा यूडाक्सस उसका समय 'अफ़लातू' से सहस्र वर्ष पूर्व बतलाते हैं, और जब गाथाओं के मन्त्र उससे भी पूर्व थे तो पता लगता है कि वैदिकधर्म महाभारत के युद्ध से सहस्रों वर्ष पूर्व ईरान में आया है। *बैबीलन* का ऐतिहासिक *बिरोसस* उसको बैबिलन का एक साम्राट् बतलाते हुए उसका समय ईसा से १२,०० वर्ष पूर्व सिद्ध करता है। फ़िरदौसी के शाहनामे को ही प्रमाणिक मानते हुए पारसी उसकी जन्म तिथि को ईरान के साम्राट् गुश्तास्प [कविविश्तास्प] के राज समय में खींच लाते हैं, परन्तु यह उनकी भूल है। यास्ना के कवि विश्तास्प से इस कवि विश्तास्प का कोई सम्बन्ध नहीं मालूम होता, क्योंकि यास्ना में उसकी वंशावली और ही प्रकार से लिखी है। यास्ना में जरथश्त्र को *एरियानावायजो* अर्थात् आर्य-जाति में परम प्रसिद्ध का पद दिया है। यह लेख उसी समय का हो सक्ता है जबकि ईरान के पारसी और भारत के आर्य अपने को एक ही जाति में से समझते थे। कुछ भी हो ज़रथश्त्र का समय ईसा पूर्व २००० वर्ष से वरे का प्रतीत नहीं होता।

जरथश्त्र के दार्शनिक तथा धार्मिक विचार और उनका पारसी मत पर प्रभाव——

जरथश्त्र के शुद्ध विचार केवल गाथाओं के द्वारा ही जाने जाते हैं। उस के धार्मिक सिद्धान्तों का मूलमन्त्र एकेश्वर वाद ही है——अर्थात् बहु देवता वाद के विरुद्ध वह केवल एकेश्वर

पूजा ही आवश्यक समझता था । गाथाओं में भी एक परब्रह्म,सर्वान्तर्यामी,सर्वज्ञ का ही पता लगता है । उस सत्यमय ईश्वर का नाम केवल अहुर ही है । ज्ञात होता है कि ज़रथश्त्र के पूर्व विचारकों के अन्दर वही प्रश्न उत्पन्न हुआ जो कि अबतक धार्मिक संसार को हिला रहा है—अर्थात् सारी सृष्टि का कर्ता यदि परमेश्वर है तो पाप क्लेश भी उसी से उत्पन्न हुआ, अतः उसको शुद्धस्वरूप नहीं कह सकते । इसी लिये ज़रथश्त्र के पूर्व पुरोहितों ने देवतों के दो विभाग किये—अहुर को बहुवचनान्त बना उन्होंने पुण्य के देवतों के लिये प्रयुक्त किया तथा पाप के देवतों को 'देव' नाम से । इस समय तक देवों का शिरोमणि अहुर का विरोधी नहीं समझा जाता था । ज़रथश्त्र सुधारक था और उसने सबसे पहिला संशोधन यह किया कि अहुर का एक वचनान्त प्रयोग कर के उसके साथ एक और शब्द जोड़ा और एक अद्वितीय परमात्मा का नाम "अहुरो-मज़्दाओ" रक्खा । मज़्द के अर्थ हैं बुद्धि पूर्वक कार्य कर्त्ता के और इस शब्द को पाश्चात्य विचारकों ने संस्कृत के मेधा से निकला हुआ बतलाया है। यही अहुरो-मज्दाओ शब्द ईरान के सासानी सम्राटों के समय अहुरमज़्दी बन गया, और अब फ़ारसी में उसे हुरमज़्द कहते हैं । ज़रथश्त्र अहुरो मज़्दाओ की स्तुति इस प्रकार करता है—

"इहलौकिक तथा पारलौकिक जीवन का विधाता, सारे विश्व का स्वामी, जिसके अधिकार में सारी प्रजा है, वही प्रकाश है, प्रकाश का स्रोत है, वही बुद्धि, तथा बुद्धि में साधन-

कोटि है, सब सांसारिक तथा आत्मिक उत्तम पदार्थ उसी के वश में हैं—

परममानस [बुहुमानो] अमृत जीवन [अमेरताड] स्वास्थ्य [हौरवताड] परम सत्य [अशवहिष्ट] [प्रेम तथा पवित्रता] आरमयति [सर्व सांसारिक ऐश्वर्य,—[क्षत्र वैर्य] क्षात्रिक वीर्य ये सब फल वह धर्मात्मा पुरुषों को देता है, जो मन, तथा कर्म से सत्य मार्ग पर चलते हैं। सारे विश्व का शासक होने से वह न केवल धर्मात्माओं को उत्तम फल देता है प्रत्युत् अधर्मियों को दण्ड भी देता है।"

ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट विधित होता है कि ज़रथश्त्र दो जुदे २ जगत् सृष्टा नहीं मानता था, जिनको वह धर्म अधर्म का उत्पादक तथा एक दूसरे का विरोधी समझता हो। उसका मन्तव्य इतना ही था कि मनुष्य के अन्दर धर्म के साथ, उसके अभाव, अधर्म की विद्यमानता पाई जाती है। वह इन दोनों को येमा [संस्कृत यमौ] समझता था जो एक दूसरे के साथ रहने वाले हैं। इनका नाम उसने स्पेन्टो मैनयूष, तथा अंगरो-मैनयूष रक्खा था—जिनके अर्थ हैं—पवित्रात्मा तथा दुरात्मा। ज़रथश्त्र के मत में स्पेन्टोमन्यूष जीवन प्रदाता हैं तथा एंगरो० जीवन समाप्त करने वाला है। पर वह यह भी मानता था कि एंगरों मैनयूष ज़ीवात्मा को शरीर के वन्धन से छुड़ा कर अमर जीवन के योग्य बना देता तथा उसको अमर कर देता है।

जिस प्रकार बौद्धधर्म के वर्तमान नास्तिकपन के लिये बुद्धदेव ज़िम्मेवार नहीं है इसी प्रकार पारसीमत के वर्तमान द्वैत विचार के लिये ज़रथस्त्र ज़िम्मेवार नहीं है। पारसियों के इस विचार का पता वैण्डिडाड के फरगर्द (अध्यायों) से चलता है। ज़रथस्त्र के अनुयायियों की समझ में यह नहीं आया कि किस प्रकार एक ही परमात्मा से धर्माधर्म की उत्पत्ति हो सकती है। यदि वह धर्म के तिरोभाव को ही अधर्म समझ लेते, जैसा कि वैदिकधर्म मानता है, तो इस प्रकार के सन्देह में न फंसते। जब दो पृथक् सृष्टि कर्ताओं की कल्पना की गई तो फिर उनका दर्बार भी बनाया गया। वेद में सप्त बहुत स्थानों में आता है। सप्त ऋषि, अग्नि के सप्तरूप, सप्तलोक इत्यादि। इसके अनुकरण में इन्होंने भी भली शक्ति के ६ मित्र बनाकर ७ की संख्या पूर्ण की और इसी प्रकार अंगरो मनयूष अर्थात् शैतान की सभा के भी उस समेत ७ बनाये। परन्तु यहां एक कठिनाई और सामने आई। जिनकी उत्पत्ति है उनका उत्पन्नकर्त्ता अवश्य अन्य चाहिये और कहीं एकता अवश्य चाहिए, अतएव उन्होंने ज़र्वन अकारण (अनन्त काल) की कल्पना की जिस से अहुर मुज़्द और अहरेमन दोनों की उत्पत्ति की गई। पारसियों में भी इस समय दो भेद हैं, और सासानियों के समय से चले आये हैं-एक Magi जो कि ज़रथस्त्र के असली सिद्धान्तों को मानने वाले हैं, दूसरे ज़न्दी जो कि नई कल्पनाओं को मानने वाले हैं।

पारसीमत के शेष सिद्धान्त

गाथा के मत में मनुष्य के दो जीवन हैं-एक आत्मिक अर्थात् पारलौकिक और दूसरा एहलौकिक। जीवात्मा के अमरत्व तथा कर्मफल के चिन्ह गाथाओं में पाये जाते हैं। गरोदेमान (वहिस्थ, गरुतमान, पारसी वहिश्त तथा सं० स्वर्ग) और द्रुजोदेमान (नाशगृह, नरक) विशेष स्थान आर्वाचीन पारसियों ने कल्पना कर लिये हैं; गाथाओं में यह सब विशेष अवस्थाओं के लिए ही काम मे लाये जाते थे। जीवात्मा के अन्तिम दिवस उठने का सिद्धान्त जो ईसाईयों तथा महम्मादियों में प्रचालित है उसका पता भी पारसी मत से चलता है तथा यहीं से लिया गया मालूम होता है। गाथाओं में इस विचार का कोई स्पष्ट आधार प्रतीत नहीं होता। वहां केवल इतना पता लगता है कि संसार में कुकर्म करते हुए मनुष्य जिस जीवन का नाश करलेता है वह सांसारिक जीवन की समाप्ति पर पुनर्जीवित हो जाता है। जरथश्त्र का ऋषि आत्मघात के सर्वथा विरुद्ध शिक्षा देता है तथा उसको महापाप समझता है। ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट पता लगता है कि जब भारतवर्ष में शुद्ध वैदिक धर्म का प्रचार था तब आत्मिक सिद्धान्त इसी देश से ईरान में गये। फिर मनुष्यों की बुद्धि की निर्बलता के कारण नाना देवताओं की कल्पना की गई जिसको जरथश्त्र ने निर्मूल करके पुनः वैदिक धर्म की स्थापना की। उसके पश्चात् फिर से उसके शुद्ध सिद्धान्तों को बिगाड़ा गया और अब फिर किसी नये सुधारक की आवश्यकता है जो पुनः उसको पारसी मत के श्रोत तक पहुंचा कर आर्यों तथा पारसियों के भेद भाव को मिटा देवे।

सद्धर्म्म-प्रचारक।

आर्य्य-भाषा का बहुत पुराना साप्ताहिक पत्र, जो २८ वर्षों से सहस्रों तक सच्चे धर्म का संदेश पहुंचाता रहा है। वार्षिक मूल्य ३)। आर्य-भाषा (हिन्दी) के पत्रों में इसका स्थान बहुत ऊंचा है। पक्षपातरहित होकर धार्मिक, सामाजिक तथा शास्त्रीय विषयों पर विचार करना इसका उद्देश्य रहा है। शुद्ध धार्मिक राजनीति का मार्ग वह सदा आर्य पुरुषों को दिखलाता रहा है।

यदि मातृ-भाषा की उन्नति करना चाहते हो तो इस साप्ताहिक पत्र के अवश्य ग्राहक बनो।

प्रबन्धकर्त्ता, सद्धर्म्म-प्रचा[रक]
गुरुकुल भूमि,
श्यामपुर-काङ्गड़ी, पोस्ट
ज़िला बि[जनौर]

प्रचारक पुस्तक भण्डार

१. आर्य्य पथिक लेखराम .... मूल्य
२. संस्कृत साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन „ ।−
३. मृतक श्राद्ध पर विचार .... „ =)

आर्य-धर्म ग्रन्थ-माला।

प्रथम गुच्छक—आर्यों की नित्यकर्म पद्धति .... −)
द्वितीय „ पांच महायज्ञों की विधि .... −)
तृतीय „ विस्तार पूर्वक सन्ध्या विधि .... =)
चतुर्थ „ आचाऽनाचार और छूत छात .... =)
पंचम „ ईसाई पक्षपात और आर्य्य-समाज .... =)
षष्ठ „ वेद और आर्य-समाज .... −)
सप्तम „ मातृभाषा का उद्धार .... =)
अष्टम „ पारसीमत और वैदिकधर्म .... =

अन्य भाग तय्यार हो रहे हैं।

कमीशन का दर—२०) और उस से अधिक के खरीदार को १५) प्रतिशतक, ५०) और उससे अधिक के खरीदार को २०) प्रतिशतक और १००) और उससे अधिक के खरीदार को २५) प्रतिशतक कमीशन दिया जायगा।

मिलने का पता:—

प्रबन्धकर्त्ता, प्रचारक पुस्तक-भण्डार,
O. P. शामपुर-काङ्गड़ी, ज़िला बिजनौर (U.P.)